समयसार गाथा दूसरी। पहला एक बोल चला है। जीव कैसा है ? जीव पदार्थ है न ? यह जीव पदार्थ कैसा है ? यह एक बोल हुआ।

दूसरा बोल। फिर जीव कैसा है ? है ? बीच में।

नैयायिक और वैशेषिक सत्ता को नित्य ही मानते हैं, और बौद्ध सत्ता को क्षणिक

ही मानते हैं। उनका निराकरण सत्ता को उत्पादव्यय ध्रुवरूप कहने से हुआ, यहाँ तक आया है।

`पुनः जीव कैसा है ? चैतन्यस्वरूपपने से'... उसका स्वरूप तो चैतन्य है। जानना देखना उसका कायम स्वरूप है। `चैतन्यस्वरूपरूप से नित्य उद्योतरूप है' चैतन्य के स्वरूप से जीव नित्य प्रकाशमान है। कैसा है जीव ? कि चैतन्यस्वरूपपने से नित्यप्रकाशमान, निर्मल उद्योतरूप स्पष्ट, उद्योतरूप निर्मल और स्पष्ट `**दर्शनज्ञानज्योति स्वरूप है**' यह त्रिकाली की बात कही। त्रिकाली तत्त्व - ऐसा है। वह अब किसमें कब स्थिर होता है यह बाद में कहेंगे। ऐसी चीज है ! वह दर्शनज्ञान में स्थित होती, तब उसे स्वसमय कहते हैं - ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा ! नित्यउद्योतरूप निर्मल स्पष्ट प्रत्यक्ष दर्शन ज्ञान-ज्योतिस्वरूप है। यह तो प्रत्यक्ष दर्शनज्ञान ज्योति त्रिकाल उसका स्वरूप है। नित्यउद्योत निर्मल है। - ऐसा ही जीव द्रव्य है - ऐसा सिद्ध करना है, जीव पदार्थ - ऐसा है। फिर किसमें स्थित हो यह बाद में कहेंगे, कि पर्याय में।

`इस विशेषण से चैतन्य को ज्ञानाकारस्वरूप नहीं माननेवाले सांख्यमतियों का निषेध हुआ'। कोस्टक में कहा है कि कारण कि चैतन्य का परिणमन दर्शन-ज्ञान स्वरूप है। चैतन्य लेना है न ! जाननेवाला देखनेवाला - ऐसा परिणमन दर्शन ज्ञानरूप है। `चैतन्य का परिणमन दर्शनज्ञानरूप है'। (श्रोता :- तीनों काल जीव कैसा है वह बताना है ?) तीनों काल जीव द्रव्य जो है वह चैतन्यस्वरूपपने के कारण नित्य उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शनज्ञान ज्योतिस्वरूप है। अर्थात कि चैतन्य का परिणमन दर्शनज्ञान स्वरूप है। इसमें परिणमन लिया। वैसे तो त्रिकाली बताना है। त्रिकाली दर्शनज्ञान स्वरूप है, उसका परिणमन दर्शनज्ञानमय है। आहाहा ! यहाँ तो त्रिकाली चैतन्य द्रव्य की दृष्टि कराके, चैतन्य के अंदर दर्शन ज्ञान में स्थित हुआ यह आत्मा है - ऐसा बताना है। आहाहाहा !

तीसरा बोल, फिर वह कैसा है प्रभु जीव द्रव्य ? अनंत धर्मों में रहनेवाला जो एक धर्मीपना आहाहा ! अनंतगुणरूपीधर्म आहाहा... अनंत गुणोंरूपी धर्म, उसमें जो रहा हुआ धर्मीरूप द्रव्य एक। आहाहा ! ***अनंतगुणों में... क्योंकि अनंतधर्म (हों) - ऐसा इसका एक गुण है।*** अनंत धर्म - ऐसा इसका एक गुण है। इसलिये अनंत धर्मों में रहनेवाला कहा। आहाहा ! एक धर्मीपना-एकद्रव्यपना एक द्रव्य में अनंतगुण रहते हैं, इसलिये एकरूप वह द्रव्य, अनंत धर्मों में एकरूपी धर्मी... वह द्रव्य है। है न ? अनंतधर्मों में रहनेवाला, ***धर्म अर्थात् गुण और पर्याय*** अथवा त्रिकाली गुण एक धर्मीपना जिसके कारण वह द्रव्यपना प्रगट है। कारण कि अनंत धर्मों की एकता

वह द्रव्यपना है। कोई भिन्न चीज नहीं। ज्ञान, दर्शन जो गुण अपार हैं, अनंत हैं और वह गुण, एक गुण जहाँ व्यापक है वहीं अनंत गुण व्यापक हैं। वहाँ अनंतगुण व्यापक हैं। - ऐसा कहा न ? इन अनंत धर्मों में रहा हुआ एक धर्मीपना, यह वस्तु जो है आत्मा, उसके गुण अनंत, परंतु उन अनंत धर्मों का एकरूप धर्मी वह द्रव्य है। आहाहा ! अर्थात ? यह धर्म अनंत इनका कोई अंत नहीं और इन धर्मों में, प्रत्येक धर्म व्यापक है। अर्थात ? ***कि अनंत गुण हैं आत्मा में, तो ज्ञान ऊपर है तथा दर्शन नीचे, चारित्र नीचे शांति नीचे वीर्य नीचे - ऐसा इसमें क्षेत्र भेद नहीं।*** समझ में आया ? जहाँ ज्ञान है वही दर्शन है, इसप्रकार व्यापक (पसरा हुआ) है। एक एक गुण अनंत धर्मों (गुणों) में व्यापक है। एक एक गुण अनंत धर्मों में रहा हुआ है।

जिस प्रकार यह रजकण है। ऊपर का रजकण वह नीचे के रजकण के साथ नहीं, नीचे का ऊपर के साथ नहीं इसप्रकार आत्मा में (गुण) नहीं। आत्मा में अनंत गुण उसमें एक गुण ऊपर है और (दूसरा) बाद में है फिर बाद में है इसप्रकार अनंत गुण का पिण्ड है - ऐसा नहीं आहाहा ! ***एक एक गुण सर्वगुणों में व्यापक है।*** आहाहा ! जिसप्रकार आम को रंग से देखो तो पूरे आम में व्यापक है। गंध से देखो तो पूरा आम गंध में व्यापक है (गंधमय)। रस से देखो तो पूरा आम रस में व्यापक है तथा स्पर्श से देखो तो पूरा आम स्पर्शमें व्यापक है। - ऐसा नहीं कि आम का रस वह ऊपर रहता है, गंध वह अंदर रहती है, स्पर्श नीचे है - ऐसा विभाग नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

गहन विषय है ! यह जितने अनंत धर्म... एक तो इन अनंतों की गंभीरता द्रव्य एक... और यह (गुण) अनंत है ***जहाँ एक है वही अनंत है। जो एक है (गुण) अनंत है जहाँ एक है वही अनंत है। जो एक है (वह) दूसरे रूप होता नहीं। एक गुण है (वह) दूसरे गुणरूप होता नहीं। परंतु जहाँ एक गुण है वही अनंत गुण साथ में व्यापक हैं।*** ऐसी बात है, इसलिये उसको अनंत धर्मों में रहा हुआ एकधर्मी (पना), द्रव्य अनंत धर्मों में व्यापनेवाला (एक)। आहाहा ! जैसे एक धर्म अनंत (धर्मों) में व्यापक है इसीप्रकार धर्मी द्रव्य अनंत गुणों में व्यापक है। आहाहा ! अनंत धर्मों में रहनेवाला एक धर्मीपना, आहाहा ! उसके कारण जैसे द्रव्यपना प्रगट है... वस्तु वह प्रगट है। आहाहा ! कारण कि अनंत धर्मों की एकता वह द्रव्यपना है। यह स्पष्टीकरण किया।

वह थोड़ा कोष्टक में चैतन्य का परिणमन लिखा है न ? वास्तव में तो नित्य दर्शन-ज्ञान स्वरूप यहाँ सिद्ध करना है, यहाँ परिणमन सिद्ध नहीं करना। परिणमन को यहाँ सिद्ध नहीं करना, यह तो वस्तु ऐसी है बस इतना। बाद में स्थित कहाँ

होती है, फिर परिणमन की दशा, वह बाद में कहेंगे। जो यह कोष्टक में है न? कारण कि चैतन्य का परिणमन दर्शनज्ञान स्वरूप है वह वहाँ बैठता नहीं। क्या कहा समझ में आया ?

यहाँ यह नित्य लेना है न, वस्तु जीव पदार्थ, त्रिकाल जीव पदार्थ कैसा है? इसके बाद स्थिति होती है दर्शन ज्ञान चारित्र में - यह परिणमन है। समझ में आया? पाठ यह है न, देखो न ? चैतन्य स्वरूपपने से नित्य उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शन-ज्ञान ज्योतिस्वरूप है।

और उसके अनंत धर्मों में रहनेवाला, ओहोहो ! जो एक धर्मीपना जिसके कारण इसे द्रव्यपना प्रगट है। क्योंकि अनंत धर्मों की एकता वह द्रव्यपना है, इस विशेषण से वस्तु को धर्म रहित-गुण रहित माननेवाले बौद्धमतियों का निषेध हुआ। यह जीव पदार्थ, `जीवो' यह शब्द है न ? इसकी व्याख्या करते हैं यह `**जीवो**' फिर `**जीवो चरित दंसणणाण ट्ठिदो**' फिर वह पर्याय की व्याख्या चलेगी समझ में आया कुछ? (श्रोता :- आप सूक्ष्मबात करते हो फिर कहते समझ में आया ?)

यह सभी नवयुवक सुनते है देखो न सभी। यह तो आत्मा की बात है। आहाहा ! ***एक तरफ `तत्त्वार्थसूत्र' में - ऐसा कहते कि उदयभाव वह जीव है। है न ? तत्त्वार्थ सूत्र दूसरा अध्याय, पुण्यपाप, रागद्वेष यह जीव तत्त्व, जीव है क्योंकि जीव की पर्याय है अतः जीव है। एक तरफ - ऐसा कहते हैं कि क्षयोपशमभाव आदि (चार) भाव भी जीव में नहीं। यहाँ द्रव्य की अपेक्षा से बात चलती है। एक तरफ - ऐसा कहें कि जीव में जो पर्याय राग, द्वेष, पुण्य-पाप होते हैं वह सभी पुद्गल है, पुद्गल है। वह, क्योंकि उसमें से निकल जाते हैं, इसलिये कि उसकी वस्तु नहीं। तथा उसे जीव तत्त्व कहा क्योंकि उसकी पर्याय में उसीके अस्तित्व में है।*** कर्म की सत्ता में राग, द्वेष, पुण्य, पाप नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है।

एक ओर कहें कि जीव में क्षायिकभाव नहीं नियमसार। यह त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से, क्षायिक भाव वस्तु में कहाँ है ? वस्तु तो परमपारिणामिकभाव एकरूप है। क्षायिक भाव तो पर्याय है। क्षायिकभाव जीव द्रव्य में नहीं और एकतरफ कहें कि पर्याय में (होनेवाले) राग द्वेष वह जीव तत्त्व है। किस अपेक्षा से... (अपेक्षा) जानना चाहिए न ? पर्याय इसकी है इसी में होती है परंतु वस्तु का स्वभाव नहीं, इसलिये उसें गौणकर पुद्गल का परिणाम कहा।

अब यहाँ जो है वह तो उसके अनंत गुणों की बात है। पर्याय की नहीं। अरे ! - ऐसा... सभी समझना।

`अनंत धर्मों की एकता वह द्रव्यपना है' आहाहा ! वस्तु में जो अनेक गुण हैं,

पर्याय की यहाँ अभी बात नहीं। उसीप्रकार पुण्यपाप के विकल्प उसमें हैं ही नहीं। वस्तु के गुणों में नहीं और वस्तु में नहीं। आहाहा ! - ऐसा जो जीव पदार्थ अनंत गुणों का एकरूप वह द्रव्य है। - ऐसा कह कर धर्मों से रहित माननेवालों का निषेध किया।

और कैसा है ? अब उसकी पर्याय सहित सिद्ध करते हैं। क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तते अनेक भाव जिसका स्वभाव होने से जिसने गुणपर्याय को अंगीकर किया है। आहाहा ! क्रमरूप यह पर्याय है। क्रम क्रम से होनेवाली पर्याय, क्रम से होनेवाली में एक के बाद एक होनेवाली, एक के बाद एक फिर जो होनेवाली वही होगी, जो होना वही होगी एक के बाद एक कुछ भी, (हो) एक के बाद एक - ऐसा नहीं। ***एक के बाद एक कोई भी एक के बाद एक - ऐसा नहीं, जो होनेवाली है वह एक के बाद एक इस प्रकार क्रमवर्ती है*** वह..... आहा ! लम्बाई में इसप्रकार लगातार जीव में..... पर्याय लम्बाई अर्थात आयत-एक के बाद एक जो पर्याय होनेवाली है वह क्रमबद्ध एक के बाद एक, क्रमवर्ती कहो क्रमबद्ध कहो परंतु..... क्रमबद्ध में ज्यादा संबंध एक के बाद एक की, जो होनेवाली इस प्रकार यहाँ क्रमवर्ती में क्रमशः वर्तती है इतना। इतना भी इसमें न्याय तो आ जाता है उसमें यह..... क्रमशः वर्तती है। पर्याय एक समय (में) एक होती वही ही होगी, दूसरे समय होनेवाली, वही होगी, इसप्रकार क्रम से वह होगी- ऐसा जिसका क्रमवर्ती पर्याय का धर्म है और वह क्रमवर्ती पर्याय में उसे पर की कोई अपेक्षा नहीं, कि पर हो तो यह क्रमवर्ती पर्याय हों..... उसका अपना क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती धर्म स्वभाव है। समझ में आया ? - ऐसा सूक्ष्म है... अब समझने को कहाँ ? फुरसत मिले !

प्रथम तो सारे दिन `संसारिक पापों से फुरसत नहीं मिले। आहा ! सुनने को मिले तो फिर कहे कि जीवतत्त्व, ***राग द्वेष जीव तत्त्व (में) एक तरफ कहें राग द्वेष पुद्गल तत्त्व, किस अपेक्षा से कहते हैं (यथार्थ) ज्ञान नहीं करे तथा एकांत मान ले कि राग द्वेष जड़ के ही हैं, जड़ ही है - ऐसा भी गलत, और यह राग द्वेष वस्तु का स्वभाव है इसलिये यह तो स्वभाव में है, यह भी गलत।*** आहाहा !

`क्रमरूप और अक्रमरूप'... देखो आया, गुण है यह तिरछे क्रम में है इसप्रकार तिरछे और पर्याय इस प्रकार क्रमवर्ती है। एक के बाद एक पर्याय काल क्रम से आयत और यह (गुण) अक्रम से हैं। जितने गुण हैं उतने अक्रम से एक साथ... एक साथ परंतु ऊपर ऊपर रहते है - ऐसा नहीं। इसप्रकार सभी एक रूप में रहे हुये हैं। तिरछे-तिरछे अर्थात विस्तार.... तिरछा आत्मा का विस्तार तिरछा, पर्याय आयत (हाथ ऊपर से नीचे करते हुये) इस प्रकार लम्बी एक के बाद एक, और यह वस्तु

के गुण हैं यह अक्रम से है एक साथ अनंत (हाथ को दाँये से बायें हिलाते हुये) इसप्रकार तिरछे, फिर भी यह तिरछे एक के ऊपर एक, एक के ऊपर एक इसप्रकार ऊपर फैले हुये - ऐसे नहीं। पाथरेला समझते हो ? (जैसा हम मानते) - ऐसा विस्तार नहीं। यह एक गुण जहाँ है वहाँ सभी गुण एक साथ पसरे हुये हैं। फिर भी एक गुण दूसरे गुण रूप होता नहीं। सर्व गुण असहाय। जितने गुण अनंत हैं वह सभी असहाय हैं उनको दूसरे गुण की मदद नहीं, क्योंकि वह सत् है, असहाय है, तिरछे रहते हैं, इसलिये अक्रमरूप हैं और एक साथ व्यापे हुये हैं। अर्थात अनंत गुण अनंत संख्या में तिरछेरूप यह पहला यह दूसरा यह तीसरा - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! जिसप्रकार अनंत गुणों की संख्या में यह पहला, यह दूसरा यह आखरी- ऐसा गुणों में नहीं इसीप्रकार तिरछे गुणों में पहला गुण यह और दूसरा यह तथा तीसरा यह इसप्रकार वह तिरछा, (क्षेत्रमें फैले हुए) - ऐसा भी नहीं। समझ में आया ?

फिर से... वस्तु है उसमें अनंत गुण हैं तथा उन अनंत गुणों में काल भेद नहीं एक साथ है, एक बात ! तथा अनंत गुण हैं उसका आखरी अंतिम गुण कौन ? यह नहीं इतनी अनंत संख्या है, और वह अनंत संख्या अपेक्षा है वह..... एक दो तीन इसप्रकार जो कहे इस प्रकार नहीं रहते। एक समय में तिरछे व्यापक एक साथ में रहे हुये हैं। पण्डितजी ! आहाहा !

यह तो अभी `**जीवो**' इसकी व्याख्या करते हैं। पहला शब्द लिखा है न ? `**जीवो**' यह तो वाणी वीतराग की बापू ! सर्वज्ञ, आहाहा ! तीनलोक के नाथ की वाणी, संत जगत में आड़तिया होकर प्रसिद्ध करते हैं। ***भगवान के माल के आड़तिया हैं। कारण कि पूरा प्रत्यक्ष तो प्रभु ने देखा है, मुनियों ने पूरा प्रत्यक्ष देखा नहीं परंतु पूरे प्रत्यक्ष की उन्हें प्रतीति और विश्वास है। आहाहा !***

यह विश्वास, अनुभूति (रूप) सम्यक्दृष्टि भूमिका में... फिर वस्तु में स्थिर होनेवाले चारित्र... इस भूमिका से यह बात कर रहे हैं। आहाहा ! क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तता अर्थात ? क्रमरूप प्रवर्ते वह तो पर्याय, भले ही अक्रम में प्रवर्तते अर्थात एक साथ रहनेवाले... प्रवर्तते अर्थात, अनंतगुण है (वह) अक्रमे प्रवर्तते है। प्रवर्तते का अर्थ एक अक्रमे परिणमते हैं यह नहीं, यह बात अभी नहीं, वह परिणमन तो पर्याय (धर्म) में गया और यह गुण हैं वह अक्रमरूप प्रवर्तते (अर्थात रहनेवाले) आहाहाहाहा ! अरे, किसे खबर है? निजधर में क्या है उसकी खबर नहीं है। शेष सभी बाहर की बातें हैं। आहाहा ! - ऐसा प्रभु !

कैसा है जीव पदार्थ ? कि क्रम अक्रमरूप प्रवर्तते..... आहाहा `अनेक भाव' हैं ? दोनों अनेक भाव हैं। क्रमरूप प्रवर्तती पर्यायें अनेक भावरूप है, और गुण अक्रमरूप

रहनेवाले तिरछे एक साथ फैले हुये। इसप्रकार नहीं कि (पहले) ज्ञान (फिर) दर्शन, आनंद अपितु जहाँ ज्ञान है वहीं दर्शन है वहीं चारित्र है। इसप्रकार अनेक रूप प्रवर्तते हुये रहते हैं। आहाहाहा ! `अनेक भाव जिसका स्वभाव होने से'... ***देखा पर्याय और गुण दोनों उनका स्वभाव होने से, क्रमशः प्रवर्तना - ऐसा भी अनेक भाव रूप उसका एक स्वभाव होने से, और अक्रम प्रवर्तना-रहना यह भी इसका एक स्वभाव होने से...*** आहाहाहा !

यह तो समयसार है, भरत क्षेत्र की आखिर में आखरी, ऊँचे में ऊँची चीज, आहा... सत् को प्रसिद्ध करनेवाली वह चीज है यह।

बनिया का तो एक धंधा वही का वही बोला करे पूरे दिन, एक जाति का धंधा तो इसका यह और इसका यह, उसमें कुछ नया तर्क कि कुछ है ? यह लोहे के व्यापारी कि यह लोहा आया हो इसका यह है उसका वह है। जिसका जो धंधा हो हमारे मास्टर कहते थे ना ? हीराचन्द्र मास्टर (कहते) हम मास्टर सभी पंतु कहलाते हैं क्योंकि ? कि हमको पूरे दिन सिखाने का वही होता कहीं आड़ा तिरछा तर्क कि कहीं विशेष कुछ होता नहीं। हमारे हीराचन्द्र मास्टर, रतिलाल के पिताजी, हमारी वही की वही भाषा इसका यह तीन और दो पांच, सात और पांच बारह और फलाना वही का वही सिखाना, उसमें कहीं कोई नया तर्क, नई बात नहीं। पंतु (पोथीपण्डित) जैसे है, हम तो वही ऐसे ... बानिया समझ बिना के सभी पंतु जैसे हैं। वह का वही पूरे दिन वह के वही शब्द, वह की वही बातें नयी क्या वस्तु है ?

(श्रोता :- बानिया तो होशियार जाति है !) होशियार जाति है सब समझने जैसे ! कहा न आया था एक लड़का बीस-पच्चीस लाख का आसामी। दुकान नई करना होगी। सबके मन में - ऐसा (रहता है) कि महाराज के दर्शन करें। हमने तो इतना पूछा उनसे कि यह जो पचास साठ सत्तर वर्ष कहलाता है यह शरीर का है कि आत्मा का ? (श्रोता :- यह तो महाराज को खबर हो न ?) किरण भाई ? एक नवयुवक आया उसे जामनगर में दुकान खोलनी थी। बीस पच्चीस लाख थे। सबको प्रेम तो यहाँ बहुत है न..... गहरे गहरे तो महाराज के पैर पड़ें, (महाराज दुकान पर पधारें) मांगलिक सुनेंगे तो दुकान-दुकान अच्छी चलेगी। ऐसी ऐसी मान्यतायें हैं बाकी जो होनेवाला वही होता है। वहाँ कहाँ हमारे कारण क्या होता है ? (श्रोता :- पागल आदमी अच्छा हो जाता है)।

यहाँ कहते हैं... आहाहाहा ! जीव पदार्थ कैसा है कि जिसकी पर्यायें क्रमवर्ती प्रवर्तती है उसकी, आहाहाहाहा ! और जिसके गुण अक्रम एक साथ तिरछे विस्तार

इसप्रकार, पर्याय इस प्रकार, गुण इस प्रकार (दोनों में आड़ा खड़ा हाथ का इशारा करते हुये)। यह भी एक के बाद एक गुण - इसप्रकार नहीं। एक गुण पूरा है वही सभी अनंत गुण फैले हैं। आहाहा ! यह `विभु' नाम का गुण है न इसमें ४७ शक्ति में, विभु। जहाँ ज्ञान व्यापक है वहाँ सभी व्यापक है। यह... यह... ऐसे अनंतगुण हैं। ज्ञान यहाँ, दर्शन यहाँ, आनंद यहाँ बड़ा ढेर लगा है एक के बाद एक ऐसे नहीं। व्यापक ढेर है, जहाँ एक गुण है वही अनंत गुण रहते हैं। क्षेत्र अपेक्षा तो रहे हुये हैं भाव अपेक्षा व्यापक होकर रहे हुये हैं। आहा ! रूपया तो गिनना धूल में वहाँ क्या ? यह पात्र भी एक के बाद एक लो न इसप्रकार ! - ऐसा इसमें नहीं।

ऐसे यह गुण जो हैं... प्रथम तो एक शब्द प्रयोग किया है `क्रम और अक्रम अनेक भाव' - ऐसा कहा न ? अनेक अर्थात अनंत, दो से लेकर अनंत को अनेक कहते हैं। अर्थात वस्तु जो प्रभु आत्मा, उसकी पर्यायें अनेक इसप्रकार लम्बी क्रमशः प्रवर्तती है। वह भी एक के बाद एक आगे पीछे नहीं। यदि बीच में पाँचवें समय होनेवाली पर्याय दूसरे समय हो, दूसरे समय होनेवाली पांचमें समय हो - ऐसा भी नहीं। आहाहा ! इसप्रकार क्रमशः प्रवर्तती पर्यायें अनंत है। `अनेक' शब्द प्रयोग करके अनेक कहा है। इसीप्रकार अक्रम प्रवर्तते गुण भी अनंत हैं। आहाहा !

जरा गहराई से विचार करें तो उसका पता लगे कि, ओ हो हो हो ! (मैं कैसा हूँ)

दूसरे द्रव्य तो अपने में रहे, भिन्न। यह एक स्वयं (द्रव्य) है, जो अनंत, अनंत, अनंत गुणों से भरा हुआ, और एक गुण है वहाँ दूसरे गुण व्यापक होकर रहता हैं और अनंत हैं वहाँ संख्या का कहीं अंत नहीं, क्षेत्र से तो यह आत्मा इस शरीर प्रमाण इतने में आ गया। परंतु इसकी शक्तियाँ अर्थात गुण हैं वह तो इतने अनंत हैं कि जिसको एक के बाद एक तो काल लागू होता नहीं, परंतु उसमें आखरी का अंतिम यह गुण है - ऐसा वहाँ लागू होता नहीं। आहाहा ! इसप्रकार `अनेक' प्रवर्तते कहा। अनंत गुण एक साथ प्रवर्तते हैं। विस्ताररूप में तिरछेरूप इसप्रकार। आहाहाहा !

यह तो अब उन्नीसवींबार प्रवचन हों रहा है, यह सभी पहले अठारह बार तो बांचा गया है यह समयसार, अभी तो उन्नीसवीं बार प्रारंभ हुआ है।

(श्रोता :- हर समय भिन्न-भिन्न प्रकार से आता है ?) आये, दूसरा भिन्न प्रकार से कहीं एक जैसी बात है ? आहाहा ! (तीन वर्ष में पूरा होगा) हा यह तो कब पूरा हो ? यह तो आहाहा !

`**क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तते**' अर्थात सत्ता धारण करते... समझ में आया? `अनेक भाव जिसके स्वभाव होने से' अनेक अर्थात अनंत होने से जिसने गुण पर्याय अंगीकार किया है पदार्थ... ऐसी चीज है कि अनंत गुण अक्रमसे और अनंत पर्याय क्रम से - ऐसा अंगीकार किया है। - ऐसा यह जीव पदार्थ है। आहाहा ! गुण और पर्यायें जिसने अंगीकार किया है। आहा ! और ४९ वीं गाथा में `अव्यक्त' में - ऐसा कहते हैं कि जीव द्रव्य है उसमें पर्याय आती नहीं। ***द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं। पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं। आहाहा ! दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध करने को (कहा है) और यहाँ तो एक जीव स्वयं पूरा है उसने स्वयं गुण पर्यायों को अंगीकार किया है।*** प्रवीणभाई ! - ऐसा सूक्ष्म है। एक बार समयसार सुना अर्थात हमने सुना है बस ! अरे बापू ! यह समसार क्या चीज है आहाहा ! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा के प्रवचनों का सार है यह, यह `समयसार' है। आत्मसार, वह प्रवचनसार, उनकी वाणी का सार है। आहाहा !

ऐसे अगाध गुण और अगाध क्रम पर्यायें अनंती ऐसी जिसने अंगीकार की हैं, अर्थात कि इसप्रकार गुणपर्यायवाला द्रव्य है। गुणपर्यायवाला द्रव्य है - ऐसा `तत्त्वार्थ सूत्र' में आता है आहा !

पर्याय क्रमवर्ती होती हैं और गुणसहवर्ती होते हैं; सहवर्ती को अक्रमवर्ती भी कहते हैं, साथ में रहनेवाले अनंत गुणों को अक्रमवर्ती भी कहते हैं। ***सहवर्ती अर्थात द्रव्य के साथ में रहनेवाले - ऐसे नहीं। द्रव्य के साथ में रहनेवाला, इसलिये सहवर्ती - ऐसा नहीं, गुण-गुण स्वयं एक साथ रहते हैं इसलिये सहवर्ती, सहवर्ती यदि द्रव्य के साथ सहवर्ती कहें तो पर्याय भी द्रव्य में साथ में वर्तती ही है,*** इसलिये यहाँ तो गुण एक साथ वर्तते हैं, तिरछे भले अनंतगुण संख्या का अंत नहीं मिले फिर भी एक समय में साथमें वर्तते हैं। गुण, गुणों के साथमें रहते (वर्तते) हैं। गुण द्रव्य के साथ में वर्तते हैं, इसलिए सहवर्ती हैं - ऐसा नहीं। आहाहा ! `पंचाध्यायी' में यह है। पंचाध्यायी में इस बात का स्पष्टीकरण किया है। आहाहा !

सहवर्ती को अक्रमवर्ती भी कहते हैं, इस विशेषण से... जीव के विशेषण है न ! `इस विशेषण से पुरुष को निर्गुण माननेवाले सांख्यमतियों का निराकरण हुआ।' सांख्यमती कहते हैं कि पुरुष (आत्मा) तो निर्गुण है। वह तो उसकी प्रकृति के जो गुण हैं रजो तमो गुण, वह उसमें नहीं। परंतु उसके जो स्वभाव गुण हैं वह उसमें त्रिकाल पड़े हैं। वह तो उन्हें ख्याल नहीं। आता है न ? रजो तमो और सत्व यह तो प्रकृति के गुण हैं, यह प्रकृति के गुण स्वभाव में नहीं। आत्मा में नहीं परंतु आत्मा में जो त्रिकाल अनंत (गुण) एक समय में वर्तते हैं और अनंत पर्यायें क्रमशः हैं इन

गुण तथा पर्याय को जिसने अंगीकार किया है - ऐसा वह जीव द्रव्य है। आहाहा !

इसमें कितना याद रखना ? दुकान के धंधे में तो वही के वही उदाहरण और वह की वही रीति। नया सीखने को कुछ न मिले। नौकर बैठा हो तो वह भी यही बोला करे, वह का वही। इसका इतना और इसका इतना और इसका इतना... उसका सेठ बैठा हो तो वह भी यही करता रहता है, बोलता रहता है। आहाहा !

यह चीज तो दूसरी है बापू ! आहाहा ! देह में (से) भिन्न पदार्थ, वस्तु किसप्रकार है और किसप्रकार इसमें गुण और पर्याय प्रवर्त रहीं है ? इसलिये उस द्रव्य को, गुण और पर्यायों को अंगीकार करनेवाला कहा जाता है। आहाहा ! भाषा तो सादी (सरल) है, परंतु अब भाव तो यह जो हो वही हो न !! (श्रोता :- बहुत गंभीर है) गंभीर है। आहाहा ! (श्रोता :- निमित्त पर्याय का क्रम तोड़ डालता है - ऐसा दिखता है) बिलकुल झूठी बात है। यह ही अज्ञानी की मोटी उलझन है !

उपादान में अनेक जाति की योग्यता है। (जैसा) निमित्त आये वैसा (कार्य) हो - ऐसा कहते हैं, यह बिलकुल (एकदम) झूठी बात है। उपादान में उस समय एक ही जाति की जो उस समय निजक्षण उत्पन्न होने का समय है उस क्षण में वही होगा, एक ही योग्यता है। दूसरी योग्यता है ही नहीं। सभी कहते हैं... उपादान में अनेक जाति की योग्यता है, पानी में अनेक जाति की योग्यता है परंतु उसमें (जैसा) रंग डालो वैसा दिखेगा। हरा डालो तो हरा, पीला डालो तो पीला यह बात बिलकुल गलत है। आहाहा !

तत्त्व की बातें समझना, सुनना बहुत कठिन बापू ! शेष तो सब धूल है, बेकार सब पूरा... संसार, हैरान होकर मर गये है इसी न इसीप्रकार अनंत काल निकाला, परिभ्रमण करते हुये ! परंतु परिभ्रमण करनेवाले की दशा (पर्याय) और परिभ्रमण करनेवाले के अपने गुण और परिभ्रमण करनेवाला स्वयं कौन ? कितना ? कैसा है ? (यह) जाना नहीं। कभी तो भूल हुयी है (वह) कर्मों ने कराई है, आहा ! और कभी भूला है अपना त्रिकाली स्वभाव, है (- ऐसा मानता है)।

पर्याय में भूल जिस समय होनेवाली है क्रम में उसका (अपना) काल है, काललब्धि यह है। जिस समय जो पर्याय हो वह उसकी काललब्धि है और वह उसका निजक्षण है। आहाहा ! `मोक्षमार्ग प्रकाशक में तो वहाँ तक (कहा) कहा था न, उस दिन' कहा कि अरे... `जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभव नहीं,' `कर्म के कारण विकार हो - ऐसा मानना' जैन की आज्ञा जो माने तो ऐसी अनीति संभवे नहीं। `यह बात हुयी थी उस दिन' तीसरी साल में, परंतु अंदर... बहुत वर्षों से बैठी हुयी उल्टी (मान्यता) निकालना कठिन पड़े मनुष्य को, यदि बड़े पण्डित हो गये हों, पढ़ लिख

करके व्याकरण और संस्कृत के... ओहो ! (श्रोता :- काशी जाकर आया हो) काशी जाकर आया हो कि बनारस जाकर आया हो, काशी करवत ले आया हो। यह तो काशी भगवान यहाँ है। आहाहा ! वहाँ जाये तो उसकी खबर पड़े कि उसकी क्या स्थिति है। आहाहा !

`फिर वह कैसा है प्रभु ?' **`जीवो'** मात्र उसकी व्याख्या चलती है। आहा ! अतः इसलिये उसमें से शक्ति जो ४७ हैं उसमें से पहली जीवत्वशक्ति इसमें से निकाली है अमृतचन्द्रआचार्य ने। स्वयं टीका करनेवाले हैं न ! अमृतचन्द्र आचार्य ने गजब काम किया है। कुन्दकुन्दआचार्य ने पचंमकाल में तीर्थंकर जैसा काम किया है, इन अमृतचन्द्राचार्य ने गणधर जैसा काम किया है। एक हजार वर्ष बाद हुये कुन्दकुन्दाचार्य को मिले नहीं थे। आहा !

पेट में जैसा है, अंदर में है - ऐसी बात का स्पष्टीकरण करके रखा है यहाँ। आहा ! जिसे समाज को संतुलन रखने की परवाह नहीं। कि समाज इसको अच्छी तरह से मानेंगे कि नहीं मानेंगे इसकी जिसको परवाह नहीं, सत्य यह है। समाज व्यवस्थित रहो, सब इकट्ठे होकर मानें कि एकत्र होकर न मानों इसके साथ कोई संबंध नहीं। आहाहा !

(श्रोता :- निर्दयपने कहा है, वह निर्दयता से कहलाये ?) यह उन्हें निर्दयता से काट देता है, शास्त्र में - ऐसा पाठ है कलश है। रागद्वेष को भेद-ज्ञान (होनेपर) निर्दयता से काट डालता है। तथा - ऐसा पाठ है, मूल पाठ है, आरे की भांति, आरा होता है न आरा ? निर्दयता से भेद (करके) काट डालता है। अर्थात कि अनादि का राग का संबंध उसे इसप्रकार निर्दयता से भिन्न कर डालता है। अनादि का `बंधु' की तरह ***`परमात्मप्रकाश' में तो - ऐसा लिखा है। यह पुण्य-पाप जो अनादि से बंधु थे अनादि से साथ में रहनेवाले, अनादि का बंधु उस बंधु का घात करनेवाला आत्मा है।*** आहाहा ! अनादि काल से पुण्य और पाप को मिथ्यात्वभाव को साथ में रखा, उसे भेदज्ञानी ने एक क्षण में निर्दय होकर काट डाला, एक ही बार में। आहा ! ऐसी वस्तु है।

`फिर वह कैसा है ? अपने और परद्रव्यों के आकारों को प्रकाशने का सामर्थ होने से'... जीव द्रव्य में इतनी सामर्थ-ताकत है, कि अपना और परद्रव्यों का आकार अर्थात विशेष प्रकार `उसे प्रकाशने का सामर्थ होने से... जिसने समस्त रूप को प्रकाशित करनेवाला एकरूपपना प्राप्त किया है।' आहाहाहा !

सभी को जानने पर भी एकरूप रहा हुआ है। अनेक को जानने पर भी अनेक रूप हुआ नहीं, अनेक ज्ञेयों को जानने पर भी अनेक ज्ञेयरूप नहीं होता। अनेक

ज्ञेयों को जानने पर भी, वह ज्ञानरूप रहकर अनेक ज्ञेयों को जाना है जिसने... आहाहा ! ओ हो हो ! कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार बनाया होगा। आहाहाहा ! यह मैं प्रारंभ करता हूँ। आहाहा ! हमारे ज्ञान में, क्षयोपशम में जो भाव है, उसके अनुसार मैं बताना प्रारंभ करता हूँ। वाणी का विकल्प (है) परंतु वाणी तो उसके कारण आयेगी। आहाहा !

यह तो भाई निवृत्ति का काम है, निवृत्ति लेने के बाद... यह वस्तु बिलकुल निवृत्ति स्वरूप है अंदर... उसे जानने के लिये भाई, बहुत समय चाहिए अन्यथा इसका जन्ममरण नहीं मिटे बापा ! यह चौरासी के अवतार भाई ! यह शरीर छूटते ही कहाँ जायेगा ? भाई ! आहा ! यह शरीर छूटेगा परंतु कहीं आत्मा का नाश होगा ? आत्मा तो टिकनेवाला है। आहाहा ! तब यह सभी छूट जायेगा तो अकेले कहाँ रहोगे ? यह सभी मेरे, मेरे, मेरे करके ममता मिथ्यात्व में समय बिताया, यह मिथ्याभ्रमणा रहेगी भविष्य में। आहाहा ! और उसको भ्रम का फल परिभ्रमणरूप अवतार। आहाहा ! कोई परिचित प्रिये सगे वहाँ नहीं, कोई स्त्री-पुत्र उनका नहीं, कोई फुआ-फूफा, मौसिया, मौसी कोई नहीं। आहाहा ! अकेला जाकर अकेला घूमेगा उल्टे रास्ते ! आहाहा !

इसलिये एक बार बापू तुम समझो, तुम कौन हो, कितने हो और यह आत्मा कैसा (है) उसे स्वसमय कब कह सकते, और इसे परसमय क्यों कहा जाता है, कहते हैं यह बात समझो ! आहा ! आहाहा ! अपने और परद्रव्यों के आकार गुण और पर्याय सभी को, प्रकाशने का (जानने का) सामर्थ होने से... जिसने समस्त रूप को सभी रूपों को स्वद्रव्य, गुण, पर्याय, पर के द्रव्य, गुण, पर्याय सभी को जानने रूप प्रकाशित करनेवाला, फिरभी `एकरूपपना प्राप्त किया है।' इतने अनंत ज्ञेयों को जानती हुयी ज्ञान की पर्याय अनेकरूप-पररूप नहीं होती स्वयं के ज्ञान की पर्याय रूप में एकरूप रहती है आहाहा ! समझ में आया ? अनेक को जानने के समय भी जीव की पर्याय एकरूप अपने ज्ञानरूप रहती है। परज्ञेयरूप अनेक को जानते हुये, परज्ञेयरूप वह ज्ञान होता नहीं। आहाहा ! अग्नि को जानता हुआ ज्ञान अग्निरूप (उष्ण) होता नहीं। `ज्ञान तो ज्ञान रूप रह कर अग्नि को जानता है' आहा...हा ! इसीप्रकार ज्ञान अपने रूप रहकर अनंत ज्ञेयों को जानता है अनंत ज्ञेयों को जानने पर ज्ञान अनेकरूप खण्ड खण्ड होगया - ऐसा नहीं। आहाहा !

समयसार धर्म कथा है बापू ! यह तो भागवत कथा है आहाहा ! `एकपना प्राप्त किया है' क्या कहा ? `जिसमें अनेक वस्तुओं के आकार प्रतिभासते' आकार प्रतिभासते यह कहना भी निमित्त की (अपेक्षा से) बात है। वह तो अपनी पर्याय का इतना सामर्थ है कि स्व और पर को जानने के सामर्थरूप स्वयं परिणमता है। ऐसे

अपने परिणाम की पर्याय का इतना सामर्थरूप अस्तित्व है। पर है इसलिये पर को जानता है - ऐसा नहीं। यह पर है, उसके उस संबंध को अस्तित्व की ज्ञान की पर्याय का सामर्थ है, उतने अस्तित्व का स्वयं स्वयं में रहकर स्व को और पर को जानता, अनेकरूप परिणमित ज्ञान, इसलिये अनेक हो गया है - ऐसा नहीं। ज्ञान की पर्याय तो एकरूप स्वयं रही है। आहाहा ! यह कहीं लोहा बोहा में (मिले) - ऐसा नहीं है। आहाहा ! उसमें कहीं (नहीं) आहाहा ! सोना जवाहरातवाले लो ना बड़े सेठ हों, (धूलवाले) वहाँ यह बात नहीं है। आहाहा !

`जिसमें अनेक वस्तुओं के भाव प्रतिभासते हैं' - ऐसे एक ज्ञान के आकाररूप वह है। आहाहा ! इस विशेषण से सभी जीवों के विशेषण कहे न ? जीववस्तु (को) उसके विशेषण से बताते है, कि - ऐसा जीव है। उसे यह विशेषण है। विशेष वस्तु स्वयं, उसमें इन सभी विशेषणों से उसे पहचाना। आहाहा !

एक `**जीवो**' उसकी व्याख्या चलती है यह। `**जीवो चरित दंसणणाण ट्ठिदो**' वह फिर चलेगा। आहाहा ! अमृतचन्द्राचार्य जो कुन्दकुन्दाचार्य को मिले नहीं थे। भगवान के पास गये नहीं थे। परंतु कुन्दकुन्दाचार्य के पेट में जो भाव कहना चाहते थे भाषा में, वह भाव खोला है। आहाहा ! ऐसी टीका भरतक्षेत्र में अभी अन्य तो नहीं परंतु दिगम्बरों में इस समयसार की ऐसी टीका - ऐसी अन्य जगह नहीं। आहाहा ! एक बार तो इसे पूरा हिलाकर रख दे। आहाहा !

पर से भिन्न प्रभु तुम, पर से भिन्न लगता है। आहा ! पर को जानने पर भी पररूप होकर जानते हो - ऐसा नहीं। पर को जानते समय भी अपनेरूप रहकर होकर, तुम जानते हो। किरणभाई ! भाषा तो सरल है। ऐसी बातें है बापू क्या हो ? आहाहा !

पर का कुछ कर सकता तो नहीं, क्योंकि पर के आकार - ऐसा कहा न ! वह तो पररूप है, यहाँ - ऐसा आया न ? `अपने और परद्रव्य के आकारों को'... परद्रव्य परद्रव्यरूपे है उसके द्रव्य-गुण-पर्याय, अपने अपने द्रव्य-गुण-पर्याय हैं और सामर्थ होने से... उसे `प्रकाशने का सामर्थ होने से' पररूप होकर नहीं... अपने ज्ञानमें से हटकर पर को जानता है - ऐसा नहीं... आहा ! अपने ज्ञान के अस्तित्व में रहकर, स्व और पर के आकारों को जानने पर भी `एकरूप रहता है' एक में से दो होते नहीं। आहाहाहा !

यह ज्ञान स्वयं को जाने तथा पर को नहीं जानता। ऐसेकहनेवालों का निषेध किया। ***ज्ञान अपने को ही जानता है, पर को नहीं जानता `पर को जानता नहीं' किस अपेक्षा से ? पर में तन्मय होकर पर को जानता नहीं। परंतु पर को परमें***

तन्मय हुये बिना अपने में रहकर पर को पररूप बराबर जानता है। आहाहा !

`इस विशेषण से ज्ञान अपने को ही जानता है पर को नहीं जानता' - ऐसा एकाकार ही माननेवालों का, तथा अपने को नहीं जानता परंतु पर को ही जानता है - `ऐसे अनेकाकार माननेवालों का व्यवच्छेद हुआ', स्वयं स्वयं को नहीं जानता पर को ही जानता है - ऐसा माननेवाले है। आहाहा ! यह शरीर है, यह वाणी है, यह धंधा है उसे ज्ञान जाने - इसप्रकार ज्ञान पर को जानता है। अपने को नहीं जानता ! अरे परंतु, पर को जानने के समय जाननेवाली पर्याय अपनी है कि पर की है ? वह अपने में रहकर पर को जानती है, कि पररूप होकर पर को जानती है, तो स्वयं अपने से स्वयं सिद्ध है उसे जाने, उसे क्यों न जाने ? आहाहा !

अपने को नहीं जानता परंतु पर को जानता है - ऐसा अनेकाकार ही (ज्ञान को) माननेवालों का व्यवच्छेद हुआ। लो ! अब विशेष कहेंगे।

- प्रमाण वचन गुरुदेव !